**ओ३म्**

**“आर्यसमाज अन्य सभी से भिन्न विद्या प्रधान**

**सर्वोत्तम धार्मिक व सामाजिक संस्था है”**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 आर्यसमाज विद्या प्रधान एक धार्मिक एवं सामाजिक संगठन है। यह ऐसी संस्था है जो कि किसी भी विषय की उपेक्षा नहीं करती और सत्य ज्ञान को ही महत्व देती है। इसकी यह भी विशेषता है कि यह सत्य व असत्य के निर्णयार्थ ज्ञान व विज्ञान सहित चिन्तन, मनन व विचार एवं ध्यान को महत्व देती है। इसी कारण यह संसार की सभी धिर्मक संस्थाओं से श्रेष्ठ व महान है। हमें अध्ययन कर इस बात को स्वीकार करना पड़ता है कि आर्यसमाज से इतर संसार में जितनी भी धार्मिक व सामाजिक संस्थायें हैं वह आर्यसमाज के समान विद्या व ज्ञान को महत्व देकर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने में तत्पर नहीं है। यदि ऐसा होता तो वह अवश्य आर्यसमाज से मिलकर सत्यासत्य के निर्णय में सहयोग करतीं और जो निर्णय होता उसे अवश्य स्वीकार करतीं। आर्यसमाज वेद को ईश्वर प्रदत्त वा ईश्वरीय ज्ञान मानता है। वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है तथा अन्य किसी मत का कोई पुस्तक ईश्वरीय ज्ञान के मापदण्डों की पूर्ति नहीं करता, इसे आर्यसमाज तर्क की कसौटी पर कसकर सिद्ध करता है। हम केवल यहां ईश्वरीय ज्ञान की एक कसौटी की चर्चा करते हैं। यह कसौटी है कि ईश्वरीय ज्ञान में कोई भी बात ज्ञान, विज्ञान व सृष्टिक्रम में विरुद्ध व विपरीत नहीं हो सकती है। इस कसौटी पर जब संसार के सभी मत-मतान्तरों के ग्रन्थों की परीक्षा करते हैं तो वेद व ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के अतिरिक्त कोई ग्रन्थ इस कसौटी पर खरा वा सत्य सिद्ध नहीं होता। यही कारण है कि संसार में अनेकानेक मत-मतान्तर हैं जो अपनी अपनी ढफली व अपना अपना राग अलाप रहे हैं और किसी में साहस नहीं है कि वह सच्चे व खुले मन व मस्तिष्क से सत्य को जानकर उसे स्वीकार करे अथवा अपने मत की मान्यताओं की परीक्षा कर उसमें सत्य व ज्ञान के विपरीत बातों को हटा दें। यह साहस महाभारत काल के बाद सबसे पहले प्रज्ञा चक्षु गुरु विरजानन्द सरस्वती जी के अपूर्व प्रतिभाशाली शिष्य महर्षि दयानन्द सरस्वती ने किया था और जिसके परिणामस्वरूप उन्हें अपने प्राणों का बलिदान करना पड़ा था।

यदि संसार वा सृष्टि पर दृष्टि डाले तो इसका समस्त कार्य ज्ञान व विज्ञान के आधार पर चल रहा है। वैज्ञानिकों ने आज तक जितनी भी खोजें की हैं, उनसे ज्ञात होता है कि एक परमाणु व उसके अन्दर सूक्ष्म कण भी ईश्वर द्वारा बनाये गये विज्ञान व सृष्टि नियमों का पालन करते हैं। पृथिवी गोल है और सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है। इसी कारण रात्रि और दिवस होते हैं। पृथिवी एक निश्चित कोण पर झुकी होकर सूर्य की परिक्रमा करती है जिससे ऋतु परिवर्तन होता है। चन्द्रमा पृथिवी की परिक्रमा करता है। आज यह ज्ञान सामान्य है परन्तु मत-मतान्तर के ग्रन्थ, जिन्हें उनके अनुयायी ईश्वरीय व पारलौकिक ज्ञान मानते हैं, उनके ग्रन्थों में यह बातें या तो नदारद हैं या इसके विपरीत मिथ्या ज्ञान दिया गया है। इन मतों के ग्रन्थों के विपरीत वेदों की उत्पत्ति सृष्टि के आदि काल में, अब से लगभग 1.96 अरब वर्ष पूर्व, हुई थी। इतना प्राचीन कोई ग्रन्थ संसार में नहीं है। प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थ रामायण व महाभारत, दर्शन या उपनिषद सभी में वेदों का उल्लेख मिलता है। मत-मतान्तरों के ग्रन्थ 2000 या 2500 अथवा 3000 वर्षों से अधिक पुराने नहीं है। इनमें तो वेदों के अनुरूप सत्य ज्ञान होना चाहिये था परन्तु वेदों तक इन मत-मतान्तरों के आचार्यों की पहुंच न होने के कारण वह मध्यकालीन मान्यताओं का ही अनुकरण करते हुए दिखाई देते हैं।

ऋषि दयानन्द ऐसे पहले मनुष्य हुए जिन्होंने संसार के सभी मत-मतान्तरों के ग्रन्थों का अध्ययन किया था। उन्होंने यह पाया और उनका विस्तृत उल्लेख भी सत्यार्थप्रकाश में करके यह सिद्ध किया है कि सभी मत-मतान्तर व उनके ग्रन्थ अविद्या, अज्ञान, असत्य मान्यताओं व सिद्धान्तों से युक्त, ग्रस्त व भ्रमित हैं। यदि कोई पाठक सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन कर ले तो वह इसी निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वेद व वेदानुकूल ग्रन्थों के अतिरिक्त संसार के सभी ग्रन्थ मिथ्या व असत्य मान्यताओं से ग्रस्त हैं तथा सभी में अविद्या वा अज्ञान प्रचुर मात्रा में विद्यमान है जिससे उनके अनुयायियों को मिथ्याचार के कारण नाना प्रकार की हानियां हो रही है। उनका वर्तमान जीवन ही नहीं अपितु मृत्यु के बाद परजन्म भी इस जन्म के अविद्याजन्य कर्मों के कारण उन्नत न होकर अवनत स्थिति को ही प्राप्त होना है जिसमें उनके मनुष्य योनि में जन्म न लेकर पशु-पक्षियों आदि निम्न योनियों में जन्म लेने की भी पूरी सम्भावना है। यह भी बता दें कि बहुत से मत पुनर्जन्म को स्वीकार नहीं करते। यह उनकी सबसे बड़ी अविद्या है। ज्ञान व विज्ञान के आधार पर जीवात्मा एक अनादि, अमर व अविनाशी सत्ता है। जब उसका यह जन्म हुआ है तो स्वाभाविक है कि अनादि होने के कारण इससे पूर्व भी उसका जन्म होता रहा है और आगे भी होता रहेगा। इस जन्म व मृत्यु का नियमन करने वाला सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान परमात्मा है।

आर्यसमाज की सभी मान्यतायें एवं सिद्धान्त विद्या व ज्ञान पर आधारित है। ऋषि दयानन्द ने वेदों का गम्भीर व तलस्पर्शी अध्ययन कर व योगाभ्यास द्वारा ईश्वर साक्षात्कार से प्राप्त ज्ञान के अनुसार आर्यसमाज की मान्यताओं व सिद्धान्तों को बनाया है। आर्यसमाज की संसार के सभी मत-मतान्तरों को चुनौती है कि वह उसकी मान्यताओं पर विचार एवं परीक्षा कर सत्य होने पर ही उन्हें स्वीकार करें। हम यहां आर्यसमाज की ईश्वर व जीवात्मा विषयक मान्यता प्रस्तुत करते हैं। ईश्वर विषयक आर्यसमाज की मान्यता है कि ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है। ईश्वर सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है। ऋषि दयानन्द ने आत्मा और परमात्मा का यह स्वरूप अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार ईश्वर के अनन्त गुण, कर्म व स्वभाव हैं और उसी के अनुसार उसके निज नाम ओ३म् के अतिरिक्त गुणवाचक व सम्बन्धवाचक आदि अनेक व असंख्य नाम हैं। ईश्वर की सत्ता केवल और केवल एक है, वह दो, तीन, चार व अधिक नहीं है।

मनुष्य की आत्मा का सत्य स्वरूप भी आर्यसमाज प्रस्तुत करता है जो तर्क, युक्ति सहित वेदों के प्रमाणों से सिद्ध है। इसके अनुसार मनुष्य का आत्मा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, ज्ञानादि गुणयुक्त, अल्पज्ञ और नित्य है। आत्मा अनादि, नित्य, अजर, अमर, एकदेशी, ससीम, कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार परतन्त्र भी है। जीवात्माओं को उनके पूर्व जन्मों के कर्मानुसार सुख व दुख प्रदान करने व नये कर्मों को करके जीवन की उन्नति के लिए ही ईश्वर जीवात्माओं को जन्म देता है। हर मृत्यु के बाद जीवात्मा का कर्मानुसार तब तक जन्म होता रहता है जब तक की उसकी मुक्ति नहीं हो जाती। यह आत्मा के वैदिक स्वरूप व उसके जन्म-मरण-मुक्ति के चक्र की स्थिति है।

जीवात्मा एकदेशी, ससीम और अल्पज्ञ है। ईश्वर सर्वव्यापक, असीम और सर्वज्ञ है। मनुष्य के पास जो शरीर व धन सम्पदा है उसका स्वामी एकमात्र ईश्वर ही है। इस कारण जीवात्मा ईश्वर का ऋणी है। इस ऋण से उऋण होने और जीवन में सद्गुणों को धारण करने सहित विवेक और मोक्ष प्राप्ति के लिए उसे ईश्वर की उपासना एवं परोपकार आदि सद्कर्मों का करना आवश्यक है। इसका तर्क व युक्तिसंगत ज्ञान भी आर्यसमाज प्रस्तुत करता है। आर्यसमाज स्त्री हो या शूद्र, श्रमिक, गरीब व अमीर सबकी समान व अनिवार्य शिक्षा का समर्थक व पोषक है। इसका उदाहरण आर्यसमाज के गुरुकुलों में देखा जा सकता है। आर्यसमाज जन्मना जातिवाद का विरोध करता है जो कि कृत्रिम है व मनुष्यों में ऊंच-नीच का भेदभाव पैदा करता है। इससे समाज में शोषण व अन्याय को बढ़ावा मिला है। इसके विपरीत आर्यसमाज गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित ऐसी वर्णव्यवस्था का पोषक है जिसमें किसी के प्रति किंचित भी अन्याय, शोषण व भेदभाव न हो। छुआछूत का प्रश्न भी वैदिक वर्णव्यवस्था में नहीं है। वैदिक वर्ण व्यवस्था की श्रेष्ठता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि वैदिक काल में अज्ञानी व्यक्तियों को शूद्र कहा जाता था। यह शूद्र उच्च कोटि के वेदज्ञानी ब्राह्मणों के यहां भोजन बनाने व अन्य सेवा के कार्य करते थे और इनके हितों का भी इनके स्वामी पूरा ध्यान रखते थे। यह भी बता दें कि शूद्रों की सन्तानों को भी विद्याध्ययन की पूर्ण सुविधायें प्राप्त थी। अध्ययन में असफल और सेवा कार्य को जीवन का उद्देश्य बनाने वाले ही शूद्र कोटि में आते थे। आर्यसमाज जीवित माता-पिता व परिवार के सभी वृद्धजनों की सेवा-सुश्रुषा सहित उनके आदर-सत्कार का समर्थन करता है। पशु-पक्षियों आदि के प्रति भी उसका करूणा व दया का भाव है और वह पूर्णतः किसी भी प्राणी को अकारण दण्ड देने सहित उनकी हत्या व मांसाहार का सख्त विरोधी है। वेद भी पशु हत्या के विरोधी हैं व उनकी सेवा का विधान करते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे वैदिक समाज व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होती है।

आर्यसमाज विद्या प्रधान धार्मिक व सामाजिक संस्था है। वेद सब सत्य विद्याओं के ग्रन्थ हैं। वेदाध्ययन से मनुष्य की अविद्या का नाश होकर उसमें विद्या का प्रकाश होता है जिससे उसका जीवन श्रेष्ठ व उन्नत होता है। इसी कारण आर्यसमाज सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा तत्पर रहता है व अपने अनुयायियों से भी अपेक्षा करता है कि वह अपने निजी जीवन में भी ऐसा ही करें। अविद्या का नाश करना और विद्या की वृद्धि करना भी आर्यसमाज का नियम व सिद्धान्त है। आर्यसमाज का एक स्वर्णिम नियम यह भी है कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। एक नियम यह है कि संसार का उपकार करना ही आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात सभी मनुष्यों की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। ऐसे ही अन्य नियम भी हैं। अविद्या दूर करने के लिए ऋषि दयानन्द ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। कुछ मुख्य ग्रन्थों के नाम हैं सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, पंचमहायज्ञविधि, आर्याभिविनय, गोकरूणानिधि, व्यवहारभानु, आत्मकथा, आर्योद्देश्यरत्नमाला आदि। हम संसार के लोगों का आर्यसमाज में आकर इसके सिद्धान्तों की परीक्षा कर इसे स्वीकार करने का आह्वान करते हैं। ऐसा करने से जीवन की उन्नति सहित धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति इस जन्म व भावी जन्मों में ईश्वर की कृपा से हो सकती है। आर्यसमाज का अर्थ श्रेष्ठ लोगों का समूह व संस्था है। आर्यसमाज वस्तुतः यथा नाम तथा गुण वाली संस्था है जिसका कारण इसका निर्माण एक सच्चे ईश्वरोपासक व ऋषि द्वारा स्थापित करना है। इसका ज्ञान आपको ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को पढ़कर हो जायेगा। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**